एक और ज़िन्दगी

https://www.hindiadda.com/ek-aur-zindagi/

और उस एक क्षण के लिए प्रकाश के हृदय की धडक़न जैसे रुकी रही। कितना विचित्र था वह क्षण-आकाश से टूटकर गिरे हुए नक्षत्र जैसा! कोहरे के वक्ष में एक लकीर-सी खींचकर वह क्षण सहसा व्यतीत हो गया।

कोहरे में से गुज़रकर जाती हुई आकृतियों को उसने एक बार फिर ध्यान से देखा। क्या यह सम्भव था कि व्यक्ति की आँखें इस हद तक उसे धोखा दें? तो जो कुछ वह देख रहा था, वह यथार्थ ही नहीं था?

कुछ ही क्षण पहले जब वह कमरे से निकलकर बालकनी पर आया था, तो क्या उसने कल्पना में भी यह सोचा था कि आकाश के ओर-छोर तक फैले हुए कोहरे में, गहरे पानी की निचली सतह पर तैरती हुई मछलियों जैसी जो आकृतियाँ नज़र आ रही हैं, उनमें कहीं वे दो आकृतियाँ भी होंगी? मन्दिरवाली सडक़ से आते हुए दो कुहरीले रंगों पर जब उसकी नज़र पड़ी थी, तब भी क्या उसके मन में कहीं ऐसा अनुमान जागा था? फिर भी न जाने क्यों उसे लग रहा था जैसे बहुत समय से, बल्कि कई दिनों से, वह उनके वहाँ से गुज़रने की प्रतीक्षा कर रहा हो, जैसे कि उन्हें देखने के लिए ही वह कमरे से निकलकर बालकनी पर आया हो और उन्हीं को ढूँढ़ती हुई उसकी आँखें मन्दिरवाली सडक़ की तरफ़ मुड़ी हों।-यहाँ तक कि उस धानी आँचल और नीली नेकर के रंग भी जैसे उसके पहचाने हुए हों और कोहरे के विस्तार में वह उन दो रंगों को ही खोज रहा हो। वैसे उन आकृतियों के बालकनी के नीचे पहुँचने तक उसने उन्हें पहचाना नहीं था। परन्तु एक क्षण में सहसा वे आकृतियाँ इस तरह उसके सामने स्पष्ट हो उठी थीं जैसे जड़ता के क्षण के अवचेतन की गहराई में डूबा हुआ कोई विचार एकाएक चेतना की सतह पर कौंध गया हो।

नीली नेकरवाली आकृति घूमकर पीछे की तरफ़ देख रही थी। क्या उसे भी कोहरे में किसी की खोज थी? और किसकी? प्रकाश का मन हुआ कि उसे आवाज़ दे, मगर उसके गले से शब्द नहीं निकले। कोहरे का समुद्र अपनी गम्भीरता में ख़ामोश था, मगर उसकी अपनी ख़ामोशी एक ऐसे तूफ़ान की तरह थी जो हवा न मिलने से अपने अन्दर ही घुमडक़र रह गया हो। नहीं तो क्या वह इतना ही असमर्थ था कि उसके गले से एक शब्द भी न निकल सके?

वह बालकनी से हटकर कमरे में आ गया। वहाँ अपने अस्तव्यस्त सामान पर नज़र पड़ी, तो शरीर में निराशा की एक सिहरन दौड़ गयी। क्या यही वह ज़िन्दगी थी जिसके लिए उसने...? परन्तु उसे लगा कि उसके पास कुछ भी सोचने के लिए समय नहीं है। उसने जल्दी-जल्दी कुछ चीज़ों को उठाया और रख दिये जैसे कि कोई चीज़ ढूँढ़ रहा हो

जो उसे मिल न रही हो। अचानक खूँटी पर लटकती पतलून पर नज़र पड़ी, तो उसने पाजामा उतारकर जल्दी से उसे पहन लिया। फिर पल-भर खोया-सा खड़ा रहा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या चाहता है। क्या वह उन दोनों के पीछे जाना चाहता था? या बालकनी पर खड़ा होकर पहले की तरह उन्हें देखते रहना चाहता था?

अचानक उसका हाथ मेज़ पर रखे ताले पर पड़ गया, तो उसने उसे उठा लिया। जल्दी से दरवाज़ा बन्द करके वह ज़ीने से उतरने लगा। ज़ीने पर आकर ध्यान आया कि जूता नहीं पहना। वह पल-भर ठिठककर खड़ा रहा, मगर लौटकर नहीं गया। नीचे सडक़ पर पहुँचते ही पाँव कीचड़ में लथपथ हो गये। दूर देखा-वे दोनों आकृतियाँ घोड़ों के अड्डे के पास पहुँच चुकी थीं। वह जल्दी-जल्दी चलने लगा। पास से गुज़रते एक घोड़ेवाले से उसने कहा कि आगे जाकर नीली नेकरवाले बच्चे को रोक ले-उससे कहे कि कोई उससे मिलने के लिए आ रहा है। घोड़ेवाला घोड़ा दौड़ाता हुआ गया, मगर उन दोनों के पास न रुककर उनसे आगे निकल गया। वहाँ जाकर न जाने किसे उसने उसका सन्देश दे दिया।

जल्दी-जल्दी चलते हुए भी प्रकाश को लग रहा था जैसे वह बहुत आहिस्ता चल रहा हो, जैसे उसके घुटने जकड़ गये हों और रास्ता बहुत-बहुत लम्बा हो गया हो। उसका मन इस आशंका से बेचैन था कि उसके पास पहुँचने तक वे लोग घोड़ों पर सवार होकर वहाँ से चल न दें, और जिस दूरी को वह नापना चाहता था, वह ज्यों की त्यों न बनी रहे। मगर ज्यों-ज्यों फासला कम हो रहा था, उसका कम होना भी उसे अखर रहा था। क्या वह जान-बूझकर अपने को एक ऐसी स्थिति में नहीं डाल रहा था जिससे उसे अपने को बचाए रखना चाहिए था?

उन लोगों ने घोड़े नहीं लिये थे। वह जब उनसे तीन-चार गज़ दूर रह गया, तो सहसा उसके पाँव रुक गये। तो क्या सचमुच अब उसे उस स्थिति का सामना करना ही था?

"पाशी!" इससे पहले कि वह निश्चय कर पाता, अनायास उसके मुँह से निकल गया।

बच्चे की बड़ी-बड़ी आँखें उसकी तरफ़ घूम गयीं-साथ ही उसकी माँ की आँखें भी। कोहरे में अचानक कई-कई बिजलियाँ कौंध गयीं। प्रकाश दो-एक क़दम और आगे बढ़ गया। बच्चा हैरान आँखों से उसकी तरफ़ देखता हुआ अपनी माँ के साथ सट गया।

"पलाश, इधर आ मेरे पास," प्रकाश ने हाथ से चुटकी बजाते हुए कहा, जैसे कि यह हर रोज़ की साधारण घटना हो और बच्चा अभी कुछ मिनट पहले ही उसके पास से अपनी माँ के पास गया हो।

बच्चे ने माँ की तरफ़ देखा। वह अपनी आँखें हटाकर दूसरी तरफ़ देख रही थी। बच्चा अब और भी उसके साथ सट गया और उसकी आँखें हैरानी के साथ-साथ एक शरारत से चमक उठीं।

प्रकाश को खड़े-खड़े उलझन हो रही थी। लग रहा था कि ख़ुद चलकर उस दूरी को नापने के सिवा अब कोई चारा नहीं है। वह लम्बे-लम्बे डग भरकर बच्चे के पास पहुँचा और उसे उसने अपनी बाँहों में उठा लिया। बच्चे ने एक बार किलककर उसके हाथों से छूटने की चेष्टा की, परन्तु दूसरे ही क्षण अपनी छोटी-छोटी बाँहें उसके गले में डालकर वह उससे लिपट गया। प्रकाश उसे लिये हुए थोड़ा एक तरफ़ को हट आया।

"तूने पापा को पहचाना नहीं था क्या?"

"पैताना ता," बच्चा बाँहें उसके गले में डाले झूलने लगा।

"तो तू झट से पापा के पास आया क्यों नहीं?"

"नहीं आया," कहकर बच्चे ने उसे चूम लिया।

"तू आज ही यहाँ आया है?"

"नहीं, तल आया ता।"

"अभी रहेगा या आज ही लौट जाएगा?"

"अबी तीन-चार दिन लहूंदा।"

"तो पापा के पास मिलने आएगा न?"

"आऊंदा।"

प्रकाश ने एक बार उसे अच्छी तरह अपने साथ सटाकर चूम लिया, तो बच्चा किलककर उसके माथे, आँखों और गालों को जगह-जगह चूमने लगा।

"कैसा बच्चा है!" पास खड़े एक कश्मीरी मज़दूर ने सिर हिलाते हुए कहा।

"तुम तहाँ लहते हो?" बच्चा बाँहें उसी तरह उसकी गरदन में डाले जैसे उसे अच्छी तरह देखने के लिए थोड़ा पीछे को हट गया।

"वहाँ!" प्रकाश ने दूर अपनी बालकनी की तरफ़ इशारा किया, "तू कब तक वहाँ आएगा?"

"अबी ऊपल जातल दूद पिऊँदा, उछके बाद तुमाले पाछ आऊँदा।" बच्चे ने अब अपनी माँ की तरफ़ देखा और उसकी बाँहों से निकलने के लिए मचलने लगा।

"मैं वहाँ बालकनी में कुरसी डालकर बैठा रहूँगा और तेरा इन्तज़ार करूँगा," बच्चा बाँहों से उतरकर अपनी माँ की तरफ़ भाग गया, तो प्रकाश ने पीछे से कहा। क्षण-भर के लिए उसकी आँखें बच्चे की माँ से मिल गयीं, परन्तु अगले ही क्षण दोनों दूसरी-दूसरी तरफ़ देखने लगे। बच्चा जाकर माँ की टाँगों से लिपट गया। वह कोहरे के पार देवदारों की धुँधली रेखाओं को देखती हुई बोली, "तुझे दूध पीकर आज खिलनमर्ग नहीं चलना है?"

"नहीं," बच्चे ने उसकी टाँगों के सहारे उछलते हुए सपाट जवाब दिया, "मैं दूद पीतल पापा ते पाछ जाऊँदा।"

तीन दिन, तीन रातों से आकाश घिरा था। कोहरा धीरे-धीरे इतना घना हो गया था कि बालकनी से आगे कोई रूप,कोई रंग नज़र नहीं आता था। आकाश की पारदर्शिता पर जैसे गाढ़ा सफ़ेदा पोत दिया गया था। ज्यों-ज्यों वक़्त बीत रहा था, कोहरा और घना होता जा रहा था। कुरसी पर बैठे हुए प्रकाश को किसी-किसी क्षण महसूस होने लगता जैसे वह बालकनी पहाडियों से घिरे खुले विस्तार में न होकर अन्तरिक्ष के किसी रहस्यमय प्रदेश में बनी हो-नीचे और ऊपर केवल आकाश ही आकाश हो-अतल में बालकनी की सत्ता अपने में पूर्ण और स्वतन्त्र एक लोक की तरह हो...।

उसकी आँखें इस तरह एकटक सामने देख रही थीं, जैसे आकाश और कोहरे में उसे कोई अर्थ ढूँढना हो-अपनी बालकनी के वहाँ होने का रहस्य जानना हो।

कोहरे के बादल कई-कई रूप लेकर हवा में इधर-उधर भटक रहे थे। अपनी गहराई में फैलते और सिमटते हुए वे अपनी थाह नहीं पा रहे थे। बीच में कहीं-कहीं देवदारों की फुनगियाँ एक हरी लकीर की तरह बाहर निकली थीं-कुहरीले आकाश पर लिखी गयी एक अनिश्चित-सी लिपि जैसी। देखते-देखते वह लकीर भी गुम हुई जा रही थी-कोहरे का उफान उसे भी रहने देना नहीं चाहता था। लकीर को मिटते देखकर प्रकाश के स्नायुओं में एक तनाव-सा भर रहा था-जैसे किसी भी तरह वह उस लकीर को मिटने से बचा लेना चाहता हो। परन्तु जब लकीर एक बार मिटकर फिर कोहरे से बाहर नहीं निकली, तो उसने सिर पीछे को डाल लिया और खुद भी कोहरे में कोहरा होकर पड़

रहा...। अतीत के कोहरे में कहीं वह दिन भी था जो चार साल में अब तक बीत नहीं सका था...।

बच्चे की पहली वर्षगाँठ थी उस दिन-वही उनके जीवन की भी सबसे बड़ी गाँठ बन गयी थी...।

ब्याह के कुछ महीने बाद से ही पति-पत्नी अलग रहने लगे थे। ब्याह के साथ जो सूत्र जुडऩा चाहिए था, वह जुड़ नहीं सका था। दोनों अलग-अलग जगह काम करते थे और अपना-अपना स्वतन्त्र ताना-बाना बुनकर जी रहे थे। लोकाचार के नाते साल-छ: महीने में कभी एक बार मिल लिया करते थे। वह लोकाचार ही इस बच्चे को दुनिया में ले आया था...।

बीना समझती थी कि इस तरह जान-बूझकर उसे फँसा दिया गया है। प्रकाश सोचता था कि अनजाने में ही उससे एक कसूर हो गया है।

साल-भर बच्चा माँ के ही पास रहा था। बीच में बच्चे की दादी छ:-सात महीने उसके पास रह आयी थी।

पहली वर्षगाँठ पर बीना ने लिखा था कि वह बच्चे को लेकर अपने पिता के पास लखनऊ जा रही है। वहीं पर बच्चे के जन्म-दिन की पार्टी देगी।

प्रकाश ने उसे तार दिया था कि वह भी उस दिन लखनऊ आएगा। अपने एक मित्र के यहाँ हज़रतगंज में ठहरेगा। अच्छा होगा कि पार्टी वहीं दी जाए। लखनऊ के कुछ मित्रों को भी उसने सूचित कर दिया था कि बच्चे की वर्षगाँठ के अवसर पर वे उसके साथ चाय पीने के लिए आएँ।

उसने सोचा था कि बीना उसे स्टेशन पर मिल जाएगी, परन्तु वह नहीं मिली। हज़रतगंज पहुँचकर नहा-धो चुकने के बाद उसने बीना के पास सन्देश भेजा कि वह वहाँ पहुँच गया है, कुछ लोग साढ़े चार-पाँच बजे चाय पीने आएँगे,इससे पहले वह बच्चे को लेकर ज़रूर वहाँ आ जाए। मगर पाँच बजे, छ: बजे, सात बज गये-बीना बच्चे को लेकर नहीं आयी। दूसरी बार सन्देश भेजने पर पता चला कि वहाँ उन लोगों की पार्टी चल रही है। बीना ने कहला भेजा कि बच्चा आठ बजे तक खाली नहीं होगा, इसलिए वह अभी उसे लेकर नहीं आ सकती। प्रकाश ने अपने मित्रों को चाय पिलाकर विदा कर दिया। बच्चे के लिए ख़रीदे हुए उपहार बीना के पिता के यहाँ भेज दिये। साथ

में यह सन्देश भेजा कि बच्चा जब भी खाली हो, उसे थोड़ी देर के लिए उसके पास ले आया जाए।

मगर आठ के बाद नौ बजे, दस बजे, बारह बज गये, पर बीना न तो खुद बच्चे को लेकर आयी, और न ही उसने उसे किसी और के साथ भेजा।

वह रात-भर सोया नहीं। उसके दिमाग़ की जैसे कोई छैनी से छीलता रहा।

सुबह उसने फिर बीना के पास सन्देश भेजा। इस बार बीना बच्चे को लेकर आ गयी। उसने बताया कि रात को पार्टी देर तक चलती रही, इसलिए उसका आना सम्भव नहीं हुआ। अगर सचमुच उसे बच्चे से प्यार था, तो उसे चाहिए था कि उपहार लेकर ख़ुद उनके यहाँ पार्टी में चला आता...।

उस दिन सुबह से शुरू हुई बातचीत आधी रात तक चलती रही। प्रकाश बार-बार कहता रहा, "बीना, मैं इसका पिता हूँ। उस नाते मुझे इतना अधिकार तो है ही कि मैं इसे अपने पास बुला सकूँ।"

परन्तु बीना का उत्तर था, "आपके पास पिता का दिल होता, तो आप पार्टी में न आ जाते? यह तो एक आकस्मिक घटना ही है कि आप इसके पिता हैं।"

"बीना!" वह फटी-फटी आँखों से उसके चेहरे की तरफ़ देखता रह गया, "मैं नहीं समझ पा रहा कि तुम दरअसल चाहती क्या हो!"

"मैं कुछ भी नहीं चाहती। आपसे मैं क्या चाहूँगी?"

"तुमने सोचा है कि तुम्हारे इस तरह व्यवहार करने से बच्चे का क्या होगा?"

"जब हम अपने ही बारे में कुछ नहीं सोच सके, तो इसके बारे में क्या सोचेंगे!"

"क्या तुम पसन्द करोगी कि बच्चे को मुझे सौंप दो और खुद स्वतन्त्र हो जाओ?"

"इसे आपको सौंप दूँ?" बीना के स्वर में वितृष्णा गहरी हो गयी, "किस चीज़ के भरोसे? कल को आपकी ज़िन्दगी क्या होगी, यह कौन कह सकता है? बच्चे को उस अनिश्चित ज़िन्दगी के भरोसे छोड़ दूँ-इतनी मूर्ख मैं नहीं हूँ।"

"तो क्या तुम यही चाहोगी कि इसका फ़ैसला करने के लिए अदालत में जाया जाए?"

"आप अदालत में जाना चाहें, तो मुझे कोई एतराज़ नहीं है। ज़रूरत पडऩे पर मैं सुप्रीम कोर्ट तक आपसे लड़ूँगी। आपका बच्चे पर कोई हक नहीं है।"

बच्चे को पिता से ज़्यादा माँ की ज़रूरत होती है-कई दिन, कई सप्ताह वह मन ही मन संघर्ष करता रहा। जहाँ उसे दोनों न मिल सकें वहाँ माँ तो उसे मिलनी ही चाहिए। अच्छा है, मैं बच्चे की बात भूल जाऊँ और नए सिरे से अपनी ज़िन्दगी शुरू करने की कोशिश करूँ...।"

मगर...।

"फि$जूल की भावुकता में कुछ नहीं रखा है। बच्चे-अच्चे तो होते ही रहते हैं। सम्बन्ध-विच्छेद करके फिर से ब्याह कर लिया जाए, तो घर में और बच्चे हो जाएँगे। मन में इतना ही सोच लेना होगा कि इस बच्चे के साथ कोई दुर्घटना हो गयी थी...।"

सोचने-सोचने में दिन, सप्ताह और महीने निकलते गये। मन में आशंका उठती-क्या सचमुच पहले की ज़िन्दगी को मिटाकर इन्सान नए सिरे से ज़िन्दगी शुरू कर सकता है? ज़िन्दगी के कुछ वर्षों को वह एक दु:स्वप्न की तरह भूलने का प्रयत्न कर सकता है? कितने इन्सान हैं जिनकी ज़िन्दगी कहीं न कहीं, किसी न किसी दोराहे से ग़लत दिशा की तरफ़ भटक जाती है। क्या उचित यह नहीं कि इन्सान उस रास्ते को बदलकर अपने को सही दिशा में ले आये? आख़िर आदमी के पास एक ही तो ज़िन्दगी होती है-प्रयोग के लिए भी और जीने के लिए भी। तो क्यों आदमी एक प्रयोग की असफलता को ज़िन्दगी की असफलता मान ले? कोर्ट में काग़ज़ पर हस्ताक्षर करते समय छत के पंखे से टकराकर एक चिडिय़ा का बच्चा नीचे आ गिरा।

"हाय, चिडिय़ा मर गयी," किसी ने कहा।

"मरी नहीं, अभी ज़िन्दा है," कोई और बोला।

"चिडिय़ा नहीं है, चिडिय़ा का बच्चा है," किसी तीसरे ने कहा।

"नहीं चिडिय़ा है।"

"नहीं, चिडिय़ा का बच्चा है।"

"इसे उठाकर बाहर हवा में छोड़ दो।"

"नहीं, यहीं पड़ा रहने दो। बाहर इसे कोई बिल्ली-विल्ली खा जाएगी।"

"पर यह यहाँ आया किस तरह?"

"जाने किस तरह? रोशनदान के रास्ते आ गया होगा।"

"बेचारा कैसे तड़प रहा है!"

"शुक्र है,पंखे ने इसे काट नहीं दिया।"

"काट दिया होता, तो बल्कि अच्छा था। अब इस तरह लुंजे पंखों से बेचारा क्या जिएगा!"

तब तक पति-पत्नी दोनों ने काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दिए थे। बच्चा उस समय कोर्ट के अहाते में कौओं के पीछे भागता हुआ किलकारियाँ भर रहा था। वहाँ आसपास धूल उड़ रही थी और चारों तरफ़ मटियाली-सी धूप फैली थी...।

फिर दिन, सप्ताह और महीने...!

अढ़ाई साल गुज़र जाने पर भी वह फिर से ज़िन्दगी शुरू करने की बात तय नहीं कर पाया था। उस बीच बच्चा तीन बार उससे मिलने के लिए आया था। वह नौकर के साथ आता और दिन-भर उसके पास रहकर अँधेरा होने पर लौट जाता। पहली बार वह उससे शरमाता रहा था, मगर बाद में उससे हिल-मिल गया था। वह बच्चे को लेकर घूमने चला जाता, उसे आइसक्रीम खिलाता, खिलौने ले देता। बच्चा जाने के वक़्त हठ करता, "अबी नहीं दाऊँदा। दूद पीतल दाऊँदा। थाना थातल दाऊँगा।"

जब बच्चा इस तरह की बात कहता, तो उसके अन्दर कोई चीज़ दुखने लगती। उसका मन होता था कि नौकर को झिडक़कर वापस भेज दे और बच्चे को कम से कम रात भर के लिए अपने पास रख ले। जब नौकर बच्चे से कहता, "बाबा, चलो, अब देर हो रही है," तो उसका मन एक हताश आवेश से काँपने लगता, और बहुत मुश्किल से वह अपने को सँभाल पाता। आख़िरी बार बच्चा रात के नौ बजे तक रुका रह गया तो एक अपरिचित व्यक्ति उसे लेने के लिए चला आया।

बच्चा उस समय उसकी गोदी में बैठा खाना खा रहा था।

"देखिए, अब बच्चे को भेज दीजिए, इसे बहुत देर हो गयी," उस अनजबी ने कहा।

"आप देख रहे हैं, बच्चा खाना खा रहा है," उसका मन हुआ कि मुक्का मारकर उस आदमी के दाँत तोड़ दे।

"हाँ-हाँ, आप खाना खिला लीजिए," अजनबी ने उदारता के साथ कहा, "मैं नीचे इन्तज़ार कर रहा हूँ।"

गुस्से के मारे उसके हाथ इस तरह काँपने लगे कि उसके लिए बच्चे को खाना खिलाना असम्भव हो गया।

जब नौकर बच्चे को लेकर चला गया, तो उसने देखा कि बच्चे की टोपी वहीं रह गयी है। वह टोपी लिये हुए दौडक़र नीचे पहुँचा, तो देखा कि नौकर और अजनबी के अलावा बच्चे के साथ कोई और भी है-उसकी माँ। वे लोग चालीस-पचास गज़ आगे चल रहे थे। उसने नौकर को आवाज़ दी, तो चारों ने मुडक़र एक साथ उसकी तरफ़ देखा। फिर नौकर टोपी लेने के लिए लौट आया और शेष तीनों आगे चलने लगे।

उस रात कम्बल में मुँह-सिर लपेटकर वह देर तक रोता रहा।

तब नए सिरे से फिर वही सवाल उसके मन में उठने लगा। क्यों वह अपने को इस अतीत से पूरी तरह मुक्त नहीं कर लेता? अगर बसा हुआ घर-बार हो, तो उसकी चहल-पहल में वह इस दुख को भूल नहीं जाएगा? उसने अपने को इसीलिए तो बच्चे से अलग किया था कि अपनी ज़िन्दगी को एक नया मोड़ दे सके-फिर इस तरह अकेली ज़िन्दगी जीकर वह यह यन्त्रणा किसलिए सह रहा है?

परन्तु नए सिरे से ज़िन्दगी शुरू करने की कल्पना में सदा एक आशंका मिली रहती थी। वह जितना उस आशंका से लड़ता था, वह उतनी ही और तीव्र हो उठती थी-जब उसका एक प्रयोग सफल नहीं हुआ, तो कैसे कहा जा सकता था कि दूसरा प्रयोग सफल होगा?

वह पहले की भूल दोहराना नहीं चाहता था, इसलिए उसकी आशंका ने उसे बहुत सतर्क कर दिया था। वह जिस किसी लडक़ी को अपनी भावी पत्नी के रूप में देखता, उसके चेहरे में उसे अपने पहले जीवन की छाया नज़र आने लगती। हालाँकि वह स्पष्ट रूप से इस विषय में कुछ भी सोच नहीं पाता था, फिर भी उसे लगता कि वह किसी ऐसी ही लडक़ी के साथ जीवन बिता सकता है जो हर लिहाज़ से बीना के उलट हो। बीना में बहुत अहंकार था, वह उसके बराबर पढ़ी-लिखी थी, उससे ज़्यादा कमाती थी। उसे अपनी स्वतन्त्रता का बहुत मान था और उस पर भारी पड़ती थी। बातचीत भी वह खुले मरदाना ढंग से करती थी। वह अब एक ऐसी लडक़ी चाहता था जो हर लिहाज से उस पर निर्भर करे और जिसकी कमजोरियाँ एक पुरुष के आश्रय की अपेक्षा रखती हों।

कुछ ऐसी ही लडक़ी थी निर्मला-उसके मित्र कृष्ण जुनेजा की बहन। दो-बार उसने उस लडक़ी को जुनेजा के यहाँ देखा था। बहुत सीधी-सी लडक़ी थी। साधारण पढ़ी-लिखी थी और साधारण ढंग से ही रहती थी। छब्बीस-सत्ताईस की होकर भी देखने में वह अठारह-उन्नीस से ज़्यादा की नहीं लगती थी। वह जुनेजा के घर की कठिनाइयों को जानता था। उन कठिनाइयों के कारण ही शायद इतनी उम्र तक उस लडक़ी की शादी नहीं हो सकी थी। जब निर्मला के साथ उसके ब्याह की बात उठायी गयी, तो उसे सचमुच लगा कि उसकी ज़िन्दगी अब सही पटरी पर आ जाएगी। बात तय हो जाने के बाद उसे अपना-आप काफ़ी भरा-भरा-सा लगने लगा। हवा और आकाश में उसे एक और ही आकर्षण लगने लगा। निर्मला ब्याहकर घर में आयी भी नहीं थी कि वह शाम को लौटते हए फूलों की बेनियाँ ख़रीदकर घर लाने लगा। अपना पहला घर उसे छोटा लगने लगा, इसीलिए उसने एक बड़ा घर ले लिया और नया फ़र्नीचर ख़रीदकर उसे सजा दिया। पास में ज़्यादा पैसे नहीं थे, फिर भी कर्ज़ लेकर उसने निर्मला के लिए कितना कुछ बनवा डाला...।

निर्मला हँसती हुई उसके घर में आयी-मगर वह एक ऐसी हँसी थी जो हँसने का मौका न रहने पर भी थमने में नहीं आती थी।

पहले कुछ दिन तो वह समझ नहीं सका कि वह हँसी क्या है। निर्मला कभी भी बिना बात के हँसना शुरू कर देती और देर तक हँसती रहती। वह हैरान होकर उसे देखता रहता। तीन-चार साल के बच्चे भी वैसे आकस्मिक ढंग से नहीं हँसते थे जैसे वह हँसती थी। कोई उसके सामने गिर जाए या कोई चीज़ किसी के हाथ से गिरकर टूट जाए, तो उसके लिए अपनी हँसी रोकना असम्भव हो जाता था। ऐसे में लगातार दस-दस मिनट तक वह हँसी से बेहाल रहती। वह उसे समझाने की चेष्टा करता कि ऐसी बातों पर नहीं हँसा जाता, तो निर्मला को और भी हँसी छूटती। वह उसे डाँट देता, तो वह उसी आकस्मिक ढंग से बिस्तर पर लेटकर हाथ-पैर पटकती हुई रोने लगती, चिल्ला-चिल्लाकर अपनी मरी हुई माँ को पुकारने लगती, और अन्त में बाल बिखेरकर देवी बन जाती और घर-भर को शाप देने लगती। कभी अपने कपड़े फाडक़र इधर-उधर छिपा देती, अपने गहने जूतों के अन्दर सँभाल देती। कभी अपनी बाँह पर फोड़े की कल्पना करके दो-दो दिन उसके दर्द से कराहती रहती और फिर सहसा स्वस्थ होकर कपड़े धोने लगती और सुबह से शाम तक कपड़े धोती रहती।

जब मन शान्त होता, तो मुँह गोल किये वह अँगूठा चूसने लगती।

उठते-बैठते, खाते-पीते, प्रकाश के सामने निर्मला के तरह-तरह के रूप आते रहते और उसका मन एक अन्धे कुएँ में भटकने लगता। रास्ता चलते हुए उसके मन में एक शून्य-सा घिर आता और वह भौंचक्का-सा सडक़ के किनारे खड़ा होकर सोचने लगता कि वह घर से क्यों आया है और कहाँ जा रहा है। उसका किसी से मिलने या कहीं भी आने-जाने को मन न होता। कई बार वह बिलकुल जड़ होकर देर-देर तक एक ही जगह खड़ा या बैठा रहता। एक बार सडक़ पर चलते हुए वह खम्भे से टकराकर नाली में गिर गया। एक बार बस पर चढऩे की कोशिश में नीचे गिर जाने से उसकी बुश्शर्ट पीछे से फट गयी और वह इससे बेख़बर दूसरी बस में चढक़र आगे चल दिया। उसे पता तब चला जब किसी ने रास्ते में उससे कहा, "जेंटलमैन, तुम्हें घर जाकर कपड़े बदल लेने चाहिए?"

उसे लगता जैसे वह जी न रहा हो, अन्दर ही अन्दर घुट रहा हो। क्या यही वह ज़िन्दगी थी जिसे पाने के लिए उसने इतने साल अपने से संघर्ष किया था?

उसे गुस्सा आता कि जुनेजा ने उसके साथ ऐसा क्यों किया? उस लडक़ी को मानसिक अस्पताल में भेजने की जगह उसका ब्याह क्यों कर दिया? उसने जुनेजा को इस सम्बन्ध में पत्र लिखे, परन्तु उसकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। उसने जुनेजा को बुला भेजा, तो वह आया भी नहीं। वह स्वयं जुनेजा से मिलने गया, तो जवाब मिला कि निर्मला अब उसकी पत्नी है-उसके मायके के लोगों का उनकी ज़िन्दगी में कोई दख़ल नहीं है।

और निर्मला रात-दिन घर में उसी तरह हँसती और रोती रहती...!

"तुम मेरे भाई से क्या पूछने गये थे?" वह बाल बिखेरकर 'देवी' का रूप धारण किये हुए कहती, "तुम बीना की तरह मुझे भी तलाक़ देना चाहते हो? किसी तीसरी को घर में लाना चहाते हो? मगर मैं बीना नहीं हूँ। वह सती स्त्री नहीं थी। मैं सती स्त्री हूँ। तुम मुझे छोडऩे की बात मन में लाओगे, तो मैं इस घर को जलाकर भस्म कर दूँगी-सारे शहर में भूचाल ले आऊँगी। लाऊँ भूचाल?" और बाँहें फैलाकर वह चिल्लाने लगती, "आ भूचाल, आ...आ! मैं सती स्त्री हूँ, तो इस घर की ईंट से ईंट बजा दे। आ, आ, आ!"

वह उसे शान्त करने की चेष्टा करता, तो वह कहती, "देखो, तुम मुझसे दूर रहो। मेरे शरीर को हाथ मत लगाओ। मैं सती स्त्री हूँ। देवी हूँ। तुम मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहते हो? मुझे ख़राब करना चाहते हो? मेरा तुमसे ब्याह कब हुआ है? मैं तो अभी कँवारी हूँ। छोटी-सी बच्ची हूँ। संसार का कोई भी पुरुष मुझे नहीं छू सकता। मैं आध्यात्मिक जीवन जीती हूँ। मुझे कोई छूकर देखे तो...।"

और बाल बिखरे हुए इसी तरह बोलती-चिल्लाती कभी वह घर की छत पर पहुँच जाती और कभी बाहर निकलकर घर के आसपास चक्कर काटने लगती। उसने दो-एक बार होंठों पर हाथ रखकर निर्मला का मुँह बन्द करना चाहा, तो वह और भी ज़ोर से चिल्लाने लगी, "तुम मेरा मुँह बन्द करना चाहते हो? मेरा गला घोटना चाहते हो? मुझे मारना चाहते हो? तुम्हें पता है मैं देवी हूँ? मेरे चारों भाई चार शेर हैं! वे तुम्हें नोच-नोचकर खा जाएँगे। उन्हें पता है उसकी बहन देवी है। कोई मेरा बुरा चाहेगा, तो वे उसे उठाकर ले जाएँगे और काल-कोठरी में बन्द कर देंगे। मेरे बड़े भाई ने अभी-अभी नई कार ली है। मैं उसे चिट्ठी लिख दूँ, तो वह भी कार लेकर आ जाएगा, और हाथ-पैर बाँधकर तुम्हें कार में डालकर ले जाएगा। छः महीने बन्द रखेगा, फिर छोड़ेगा। तुम्हें पता नहीं वे चारों के चारों शेर कितने ज़ालिम हैं? वे राक्षस हैं, राक्षस। आदमी की बोटी-बोटी काट दें और किसी को पता भी न चले। मगर मैं उन्हें नहीं बुलाऊँगी। मैं सती स्त्री हूँ, इसलिए अपने सत्य से ही अपनी रक्षा करूँगी...!"

सब कोशिशों से हारकर वह थका हुआ अपने पढ़ने के कमरे में बन्द होकर पड़ जाता, तो भी आधी रात तक वह साथ के कमरे में उसी तरह बोलती रहती। फिर बोलते-बोलते अचानक चुप कर जाती और थोड़ी देर बाद उसका दरवाज़ा खटखटाने लगती।

"क्या बात है?" वह कहता।

"इस कमरे में मेरी साँस रुक रही है," निर्मला जवाब देती, "दरवाज़ा खोलो, मुझे अस्पताल जाना है!"

"इस समय सो जाओ," वह कहता, "सुबह तुम जहाँ कहोगी, वहाँ ले चलूँगा।"

"मैं कहती हूँ दरवाज़ा खोलो, मुझे अस्पताल जाना है," और वह ज़ोर-ज़ोर से धक्के देकर दरवाज़ा तोड़ने लगती।

वह दरवाज़ा खोल देता, तो वह हँसती हुई उसके सामने आ जाती।

"तुम्हें हँसी किस बात की आ रही है?" वह कहता।

"तुम्हें लगता है मैं हँस रही हूँ?" निर्मला और भी ज़ोर से हँसने लगती, "यह हँसी नहीं, रोना है रोना।"

"तुम अस्पताल चलना चाहती हो?"

"क्यों?"

"अभी तुम कह रही थीं...!"

"मैं अस्पताल जाने के लिए कहाँ कह रही थी? मैं तो कह रही थी कि मुझे उस कमरे में डर लगता है, मैं यहाँ तुम्हारे पास सोऊँगी।"

"देखो निर्मला, इस समय मेरा मन ठीक नहीं है। तुम बाद में चाहे मेरे पास आ जाना, मगर इस समय थोड़ी देर...।"

"मैं कहती हूँ मैं अकेली उस कमरे में नहीं सो सकती। मेरे जैसी छोटी-सी बच्ची क्या कभी अकेली सो सकती है?"

"तुम छोटी बच्ची नहीं हो, निर्मला!"

"तो तुम्हें मैं बड़ी नज़र आती हूँ? एक छोटी-सी बच्ची को बड़ी कहते तुम्हारे दिल को कुछ नहीं होता? इसलिए कि तुम मुझे अपने पास सुलाना नहीं चाहते? मगर मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी। तुम्हें मुझे अपने साथ सुलाना पड़ेगा। मैं विधवा हूँ जो अकेली सोऊँगी? मैं सुहागिन स्त्री हूँ। कोई सुहागिन क्या कभी अकेली सोती है? मैं भाँवरें लेकर तुम्हारे घर में आयी हूँ, ऐसे ही उठाकर नहीं लायी गयी। देखती हूँ तुम कैसे मुझे उस कमरे में भेजते हो?" और वह उसके पास लेटकर उससे लिपट जाती।

कुछ देर में जब उसके स्नायु शान्त हो चुकते तो लगातार उसे चूमती हुई कहती, "मेरा सुहाग! मेरा चाँद! मेरे राजा! मैं तुम्हें कभी अपने से अलग रख सकती हूँ? तुम मेरे साथ एक सौ छत्तीस साल की उम्र तक जिओगे। मुझे यह वर मिला है कि मैं एक सौ छत्तीस साल की उम्र तक सुहागिन रहूँगी। जिसकी भी मुझसे शादी होती, वह एक सौ छत्तीस साल की उम्र तक जीता। तुम देख लेना मेरी बात सच निकलती है या नहीं। मैं सती स्त्री हूँ और सती स्त्री के मुँह से निकली बात कभी झूठ नहीं होती...।"

"तुम सुबह मेरे साथ अस्पताल चलोगी?"

"क्यों, मुझे क्या हुआ है जो मैं अस्पताल जाऊँगी? मुझे तो आज तक कभी सिरदर्द भी नहीं हुआ। मैं अस्पताल क्यों जाऊँगी?"

एक दिन प्रकाश उसके लिए कई किताबें ख़रीद लाया। उसने सोचा था कि शायद पढ़ने से निर्मला के मन को एक दिशा मिल जाए और वह धीरे-धीरे अपने मन के अँधेरे से

बाहर निकलने लगे। मगर निर्मला ने उन किताबों को देखा, तो मुँह बिचकाकर एक तरफ़ हटा दिया।

"ये किताबें मैं तुम्हारे पढने़ के लिए लाया हूँ," उसने कहा।

"मेरे पढने़ के लिए?" निर्मला हैरानी के साथ बोली, "मैं इन किताबों को पढक़र क्या करूँगी? मैंने तो माक्र्सवाद,मनोविज्ञान और सभी कुछ चौदह साल की उम्र में ही पढ़ लिया था। अब इतनी बड़ी होकर मैं ये किताबें पढने़ लगूँगी?"

और उसके पास से उठकर अँगूठा चूसती हुई वह दूसरे कमरे में चली गयी।

"पापा!"

कोहरे के बादलों में भटका मन सहसा बालकनी पर लौट आया। खिलनमर्ग की सडक़ पर बहुत-से लोग घोड़े दौड़ाते जा रहे थे-एक धुँधले चित्र की बुझी-बुझी आकृतियाँ जैसे कुछ वैसे ही बुझी-बुझी आकृतियाँ क्लब से बाज़ार की तरफ़ आ रही थीं। बायीं तरफ़ बर्फ़ से ढकी पहाड़ी की एक चोटी कोहरे से बाहर निकल आयी थी, और जाने किधर से आती धूप की एक किरण ने जिसे जगमगा दिया था। कोहरे में भटके कुछ पक्षी उड़ते हुए उस चोटी के सामने आ गये, तो सहसा उनके पंख सुनहरे हो उठे-मगर अगले ही क्षण वे फिर धुँधलके में खो गये।"

प्रकाश कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और झाँककर नीचे सडक़ की तरफ़ देखने लगा। क्या वह आवाज़ पलाश की नहीं थी?मगर सडक़ पर दूर तक वैसी कोई आकृति दिखाई नहीं दे रही थी। आँखों से टूरिस्ट होटल के गेट तक जाकर वह लौट आया और गले पर हाथ रखकर जैसे निराशा की चुभन को रोके हुए फिर कुर्सी पर बैठ गया। दस के बाद ग्यारह, बारह और फिर एक बज गया था और बच्चा नहीं आया था। क्या बच्चे के पहले जन्मदिन की घटना आज फिर दोहराई जानी थी?

"पापा!"

प्रकाश ने चौंककर सिर उठाया। वही कोहरा और वही धुँधली सुनसान सडक़। दूर घोड़ों की टापें और धीमी चाल से उस तरफ़ को आता एक कश्मीरी मज़दूर! क्या वह आवाज़ उसे अपने कानों के अन्दर से सुनाई दे रही थी?

तभी कानों के अन्दर दो नन्हे पैरों की आवाज़ भी गूँज गयी और उसके बहुत पास बच्चे का स्वर किलक उठा, "पापा!" साथ ही दो नन्हीं बाँहें उसके गले से लिपट गयीं और बच्चे के झंडूले बाल उसके होंठों से छू गये।

प्रकाश ने बच्चे के शरीर को सिर से पैर तक छू लिया। फिर उसके माथे और आँखों को हल्के से चूम लिया।

"तो मैं जाऊँ, पलाश?" एक भूली हुई मगर परिचित आवाज़ ने प्रकाश को फिर चौंका दिया। उसने घूमकर पीछे देखा। कमरे के दरवाज़े के बाहर बीना दायीं तरफ़ न जाने किस चीज़ पर आँखें गड़ाए खड़ी थी।

"आप?...अन्दर आ जाइए आप...!" कहता हुआ वह बच्चे को बाँहों में लिये अस्तव्यस्त-सा कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"नहीं, मैं जा रही हूँ," बीना ने फिर भी उसकी तरफ़ नहीं देखा। "मुझे इतना बता दीजिए कि बच्चा कब तक लौटकर आएगा।"

"आप...जब कहें, तभी भेज दूँगा।" प्रकाश बालकनी की दहलीज लाँघकर कमरे में आ गया।

"चार बजे इसे दूध पीना होता है।"

"तो चार बजे तक मैं इसे वहाँ पहुँचा दूँगा।"

"इसने हल्का-सा स्वेटर ही पहन रखा है। दूसरे पुलोवर की ज़रूरत तो नहीं पड़ेगी?"

"आप दे दीजिए। ज़रूरत पड़ेगी, तो मैं इसे पहना दूँगा।"

बीना ने दहलीज़ के उस तरफ़ से पुलोवर उसकी तरफ़ बढ़ा दिया। उसने पुलोवर लेकर उसे शाल की तरह बच्चे को ओढ़ा दिया। "आप...," उसने बीना से फिर कहना चाहा कि अन्दर आ जाए, मगर उससे कहा नहीं गया। बीना चुपचाप जीने की तरफ़ चल दी। प्रकाश कमरे से निकल आया। जीने से बीना ने कहा, "देखिए, इसे आइसक्रीम वगैरह मत खिलाइएगा। इसका गला बहुत जल्द ख़राब हो जाता है।"

"अच्छा!"

बीना पल-भर रुकी रही। शायद उसे और भी कुछ कहना था। मगर फिर बिना कुछ कहे नीचे उतर गयी। बच्चा प्रकाश की बाँहों में उछलता हुआ हाथ हिलाता रहा, "ममी, टा टा! टा टा!" प्रकाश उसे लिये बालकनी पर लौट आया तो वह उसके गले में बाँहें डालकर बोला, "पापा, मैं आइछक्लीम जलूल थाऊँदा।"

"हाँ-हाँ बेटे!" प्रकाश उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा, "जो तेरे मन में आए सो खाना।"

और कुछ देर वह अपने को, बालकनी को, और यहाँ तक कि बच्चे को भी भूला हुआ सामने कोहरे में देखता रहा।

कोहरे का पर्दा धीरे-धीरे उठने लगा, तो मीलों तक फैले हरियाली के रंगमंच की धुँधली रेखाएँ स्पष्ट हो उठीं।

वे दोनों गॉल्फ-ग्राउंड पार करके क्लब की तरफ़ जा रहे थे। चलते हुए बच्चे ने पूछा, "पापा, आदमी के दो टाँगें क्यों होती हैं? चार क्यों नहीं होतीं?"

प्रकाश ने चौंककर उसकी तरफ़ देखा और कहा, "अरे!"

"क्यों पापा," बच्चा बोला, "तुमने अरे क्यों कहा है?"

"तू इतना साफ़ बोल सकता है, तो अब तक तुतलाकर क्यों बोल रहा था?" प्रकाश ने उसे बाँहों में उठाकर एक अभियुक्त की तरह सामने कर लिया। बच्चा खिलखिलाकर हँसा। प्रकाश को लगा कि यह वैसी ही हँसी है जैसी कभी वह स्वयं हँसा करता था। बच्चे के चेहरे की रेखाओं से भी उसे अपने बचपन के चेहरे की याद हो आयी। उसे लगा जैसे एकाएक उसका तीस साल पहले का चेहरा उसके सामने आ गया हो और वह ख़ुद उस चेहरे के सामने एक अभियुक्त की तरह खड़ा हो।

"ममी तो ऐछे ही अच्छा लदता है," बच्चे ने कहा।

"क्यों?"

"मेले तो नहीं पता। तुम ममी छे पूछ लेना।"

"तेरी ममी तुझे जोर से हँसने से भी मना करती है?" प्रकाश को वे दिन याद आये जब उसके खिलखिलाकर हँसने पर बीना कानों पर हाथ रख लिया करती थी।

बच्चे की बाँहें उसकी गरदन के पास कस गयीं। "हाँ," वह बोला, "ममी तहती है अच्छे बच्चे जोल छे नहीं हँछते।"

प्रकाश ने उसे बाँहों से उतार दिया। बच्चा उसकी उँगली पकड़े घास पर चलने लगा। "त्यों पापा," उसने पूछा, "अच्छे बच्चे जोल छे त्यों नहीं हँछते?"

"हँसते हैं बेटा!" प्रकाश ने उसके सिर को सहलाते हुए कहा, "सब अच्छे बच्चे ज़ोर से हँसते हैं।"

"तो ममी मेले तो त्यों लोतती है?"

"अब वह तुझे नहीं रोकेगी। और तू तुतलाकर नहीं ठीक से बोला कर। तेरी ममी तुझे इसके लिए भी मना नहीं करेगी। मैं उससे कह दूँगा।"

"तो तुमने पहले ममी छे, त्यों नहीं तहा?"

"ऐसे नहीं, कह कि तुमने पहले ममी से क्यों नहीं कहा।"

बच्चा फिर हँस दिया, "तो तुमने पहले ममी से क्यों नहीं कहा?"

"पहले मुझे याद नहीं रहा। अब याद से कह दूँगा।"

कुछ देर दोनों चुपचाप चलते रहे। फिर बच्चे ने पूछा, "पापा, तुम मेरे जन्मदिन की पार्टी में क्यों नहीं आये? ममी कहती थी तुम विलायत गये हुए थे।"

"हाँ, मैं विलायत गया हुआ था।"

"तो पापा, अब तुम विलायत नहीं जाना।"

"क्यों?"

"मेरे को अच्छा नहीं लगता। विलायत जाकर तुम्हारी शकल और ही तरह की हो गयी है।"

प्रकाश एक रूखी-सी हँसी हँसा, "कैसी हो गयी है शकल?"

"पता नहीं कैसी हो गयी है? पहले दूसरी तरह की थी, अब दूसरी तरह की है।"

"दूसरी तरह की कैसे?"

"पता नहीं। पहले तुम्हारे बाल काले-काले थे। अब सफ़ेद-सफ़ेद हो गये हैं।"

"तू इतने दिन मेरे पास नहीं आया, इसीलिए मेरे बाल सफ़ेद हो गये हैं।"

बच्चा इतने ज़ोर से हँसा कि उसके क़दम लड़खड़ा गये। "पापा, तुम तो विलायत गये हुए थे," उसने कहा, "मैं तुम्हारे पास कैसे आता? मैं क्या अकेला विलायत जा सकता हूँ?"

"क्यों नहीं जा सकता? तू इतना बड़ा तो है।"

"मैं सचमुच बड़ा हूँ न पापा?" बच्चा ताली बजाता हुआ बोला, "तुम यह बात भी ममी से कह देना। वह कहती है मैं अभी बहुत छोटा हूँ। मैं छोटा नहीं हूँ न पापा!"

"नहीं, तू छोटा कहाँ है?" प्रकाश मैदान में दौडऩे लगा, "अच्छा भागकर मुझे पकड़।"

बच्चा अपनी छोटी-छोटी टाँगें पटकता हुआ दौडऩे लगा। प्रकाश को फिर अपने बचपन की याद आयी। उसे दौड़ते देखकर तब एक बार किसी ने कहा था, "अरे यह बच्चा कैसे टाँगें पटक-पटककर दौड़ता है! इसे ठीक से चलना नहीं आता क्या?"

बच्चे की उँगली पकड़े प्रकाश क्लब के बार-रूम में दाख़िल हुआ, तो बारमैन अब्दुल्ला उसे देखकर दूर से मुसकराया।"साहब के लिए दो बोतल बियर," उसने पास खड़े बैरे से कहा, "साहब आज अपने साथ एक मेहमान को लाया है।"

"बच्चे के लिए एक गिलास पानी दे दो," प्रकाश ने काउंटर के पास रुककर कहा, "इसे प्यास लगी है।"

"ख़ाली पानी?" अब्दुल्ला बच्चे के गालों को प्यार से सहलाने लगा। "और सब दोस्तों को तो साहब बियर पिलाता है और इस बेचारे को ख़ाली पानी?" और पानी की बोतल खोलकर वह गिलास में पानी डालने लगा। जब वह गिलास बच्चे के मुँह के पास ले गया, तो बच्चे ने यह अपने हाथ में ले लिया, "मैं अपने आप पिऊँगा," उसने कहा, "मैं छोटा थोड़े ही हूँ? मैं तो बड़ा हूँ।"

"तू बड़ा है?" अब्दुल्ला हँसा, "तब तो तुझे पानी देकर मैंने ग़लती की है। बड़े लोगों को तो मैं बियर ही पिलाता हूँ।"

"बियर क्या होता है?" बच्चे ने मुँह से गिलास हटाकर पूछा।

"बियर होता नहीं, होती है।" अब्दुल्ला ने झुककर उसे चूम लिया, "तुझे पिलाऊँ क्या?"

"नहीं," कहकर बच्चे ने अपनी बाँहें प्रकाश की तरफ़ फैला दीं। प्रकाश उसे लेकर ड्योढ़ी की तरफ़ चला, तो अब्दुल्ला भी उन दोनों के साथ-साथ बाहर चला आया, "किसका बच्चा है, साहब?" उसने पूछा।

"मेरा लडक़ा है," कहकर प्रकाश बच्चे को सीढ़ी से नीचे उतारने लगा।

अब्दुल्ला हँस दिया। "साहब बहुत ख़ुशदिल आदमी है," उसने कहा।

"क्यों?"

अब्दुल्ला हँसता हुआ सिर हिलाने लगा, "आपका भी जवाब नहीं है।"

प्रकाश कुछ कहने को हुआ, मगर अपने को रोककर बच्चे को लिये हुए आगे चल दिया। अब्दुल्ला ड्योढ़ी में रुककर पीछे से सिर हिलाता रहा। बैरा शेर मोहम्मद अन्दर से निकलकर आया, तो वह और भी खुलकर हँस दिया।

"क्या बात है? अकेला खड़ा कैसे हँस रहा है?" शेर मोहम्मद ने पूछा।

"साहब का भी जवाब नहीं है," अब्दुल्ला किसी तरह हँसी पर काबू पाकर बोला।

"किस साहब का जवाब नहीं है?"

"उस साहब का," अब्दुल्ला ने प्रकाश की तरफ़ इशारा किया, "उस दिन बोलता था कि इसने इसी साल शादी की है और आज बोलता है कि यह पाँच साल का बाबा इसका लडक़ा है। जब आया था, तो अकेला था। और आज इसके लडक़ा भी हो गया!" प्रकाश ने एक बार घूमकर तीखी नज़र से उसकी तरफ़ देख लिया। अब्दुल्ला एक बार फिर खिलखिला उठा। "ऐसा ख़ुशदिल आदमी मैंने आज तक नहीं देखा।"

"पापा, घास हरी क्यों होती है? लाल क्यों नहीं होती?" क्लब से निकलकर प्रकाश ने बच्चे को एक घोड़ा किराये पर ले दिया था। लिनेनमार्ग को जानेवाली पगडंडी पर वह खुद उसके साथ-साथ पैदल चल रहा था। घास के रेशमी फैलाव पर कोहरे का आकाश इस तरह झुका था जैसे अन्दर की उमड़ती वासना उसे अपने को उस पर दबा देने के लिए विवश कर रही हो। बच्चा उत्सुक आँखों से आसपास की पहाडिय़ों और सामने से बहकर जाती पानी की पतली धार को देख रहा था। कभी कुछ क्षण वह अपने को भूला रहता, फिर अपने अन्दर के किसी भाव से प्रेरित होकर काठी पर उछलने लगता।

"हर चीज़ का अपना रंग होता है," प्रकाश ने बच्चे की जाँघ को हाथ से दबाए हुए कहा और कुछ देर खुद भी हरियाली के फैलाव में खोया रहा।

"हर चीज़ का अपना रंग क्यों होता है?"

"क्योंकि कुदरत ने हर चीज़ का अपना रंग बना दिया है।"

"कुदरत क्या होती है?"

प्रकाश ने झुककर उसकी जाँघ को चूम लिया। "कुदरत यह होती है," उसने कहा। जाँघ पर गुदगुदी होने से बच्चा भी हँसने लगा।

"तुम झूठ बोलते हो," उसने कहा।

"क्यों?"

"तुमको इसका पता ही नहीं है।"

"अच्छा, तो तू बता, घास का रंग हरा क्यों होता है?"

"घास मिट्टी के अन्दर से पैदा होती है, इसलिए इसका रंग हरा होता है।"

"अच्छा? तुझे इसका कैसे पता चल गया?"

बच्चा उछलता हुआ लगाम को झटकने लगा। "मेरे को ममी ने बताया था।"

प्रकाश के होंठों पर एक विकृत-सी मुस्कराहट आ गयी। उसे लगा जैसे आज भी उसके और बीना के बीच एक द्वन्द्व चल रहा हो और बीना उस द्वन्द्व में उस पर भारी पडऩे की चेष्टा कर रही हो। "तेरी ममी ने तुझे और क्या-क्या बता रखा है?" वह बोला, "यह भी बता रखा है कि आदमी के दो टाँगें क्यों होती हैं और चार क्यों नहीं?"

"हाँ। ममी कहती थी कि आदमी के दो टाँगें इसलिए होती हैं कि वह आधा ज़मीन पर चलता है, आधा आसमान में।"

"अच्छा?" प्रकाश के होंठों पर हँसी और मन में उदासी की एक रेखा फैल गयी, "मुझे इसका पता नहीं था।"

"तुमको तो किसी बात का भी पता नहीं है, पापा!" बच्चा बोला, "इतने बड़े होकर भी पता नहीं है!"

घास, बर्फ़ और आकाश के रंग दिन में कई-कई बार बदल जाते थे। बदलते रंगों के साथ मन भी और से और होने लगता था। सुबह उठते ही प्रकाश बच्चे के आने की प्रतीक्षा करने लगता। बार-बार वह बालकनी पर जाता और टूरिस्ट होटल की तरफ़ देखता हुआ देर-देर तक वहाँ खड़ा रहता। नाश्ता या खाना खाने जाने के लिए भी वह वहाँ से नहीं हटना चाहता था। उसे डर था कि बच्चा इस बीच वहाँ आकर लौट न जाए। तीन दिन में उसे साथ लिये वह कितनी ही बार घूमने के लिए गया था, उसके घोड़े के पीछे-पीछे दौड़ा था और उसके साथ घास पर लोटता रहा था। बच्चा जान-बूझकर रास्ते के कीचड़ में अपने पाँव लथपथ कर लेता और होंठ बिसूरकर कहता, "पापा, पाँव धो दो।"वह उसे उठाए इधर-उधर पानी ढूँढ़ता फिरता। बच्चे को वह जिस किसी कोण से देखता, उसी कोण से उसकी तस्वीर ले लेना चाहता। जब बच्चा थक जाता और लौटकर अपनी ममी के पास जाने का हठ करने लगता, तो वह उसे तरह-तरह के लालच देकर अपने पास रोक रखना चाहता। एक बार उसने बच्चे को अपनी माँ के साथ दूर से आते देखा और उतरकर नीचे चला गया। जब वह पास पहुँचा, तो बच्चा दौडक़र उसकी तरफ़ आने की जगह माँ के साथ फोटोग्राफर की दुकान के अन्दर चला गया। वह कुछ देर सडक़ पर रुका रहा, फिर यह सोचकर ऊपर चला आया कि फोटोग्राफर की दुकान से निकलकर बच्चा अपने-आप ऊपर आ जाएगा। मगर बालकनी पर खड़े-खड़े उसने देखा कि बच्चा दुकान से निकलकर उस तरफ़ आने की बजाय हठ के साथ अपनी माँ का हाथ खींचता हुआ उसे वापस टूरिस्ट होटल की तरफ़ ले जा रहा है। उसका मन हुआ कि फिर नीचे जाकर बच्चे को अपने साथ ले आये, मगर कोई चीज़ उसके पैरों को रोके रही और वह वहीं खड़ा उसे देखता रहा। शाम तक न जाने कितनी बार वह बालकनी पर आया और कितनी-कितनी देर वहाँ खड़ा रहा। आख़िर उससे नहीं रहा गया, तो उसने नीचे जाकर कुछ चेरी ख़रीदी और बच्चे को देने के बहाने टूरिस्ट होटल की तरफ़ चल दिया। अभी वह टूरिस्ट होटल से कुछ फ़ासले पर था कि बच्चा अपनी माँ के साथ बाहर आता दिखाई दिया। मगर उस पर नज़र पड़ते ही वह वापस होटल की गैलरी में भाग गया।

प्रकाश जहाँ था, वहीं खड़ा रहा। पल-भर के लिए उसकी आँख बीना से मिलीं। उसे लगा कि बीना का चेहरा पहले से कुछ साँवला हो गया है और उसकी आँखों के नीचे स्याह दायरे उभर आये हैं। वह पहले से काफ़ी दुबली भी लग रही थी। कुछ पल रुके रहने के बाद प्रकाश आगे बढ़ गया और चेरीवाला लिफ़ाफ़ा बीना की तरफ़ बढ़ाकर ख़ुश्क गले से बोला, "यह मैं बच्चे के लिए लाया था।"

बीना ने लिफ़ाफ़ा ले लिया, मगर लेते हुए उसकी आँखें दूसरी तरफ़ मुड़ गयीं।
"पलाश!" उसने कुछ अस्थिर आवाज़ में बच्चे को पुकारा, "यह ले, पापा तेरे लिए चेरी लाए हैं।"

"मैं नहीं लेता," बच्चे ने गैलरी से कहा और भागकर और भी दूर चला गया।

बीना ने एक असहाय नज़र बच्चे पर डाली और प्रकाश की तरफ़ देखकर बोली, "कहता है, मैं पापा से नहीं बोलूँगा। वे सुबह रुके क्यों नहीं, चले क्यों गए?"

प्रकाश बीना को उत्तर न देकर गैलरी में चला गया और कुछ दूर बच्चे का पीछा करके उसने उसे बाँहों में उठा लिया। "मैं तुमसे नहीं बोलूँगा, कभी नहीं बोलूँगा," बच्चा अपने को छुड़ाने की चेष्टा करता कहता रहा।

"ऐसी क्या बात है?" प्रकाश उसे पुचकारने की चेष्टा करने लगा, "पापा से इस तरह नाराज़ होते हैं क्या?"

"तुमने मेरी तस्वीरें क्यों नहीं देखीं?"

"कहाँ थी तेरी तस्वीरें? मुझे तो पता ही नहीं था।"

"पता क्यों नहीं था? तुम दुकान के बाहर से ही क्यों चल गए थे?"

"अच्छा ला, पहले तेरी तस्वीरें देखें, फिर घूमने चलेंगे।"

"यह सुबह आपको दिखाने के लिए ही तस्वीरें लेने गया था।" बीना के साथ खड़ी एक युवा स्त्री ने कहा। प्रकाश ने ध्यान नहीं दिया था कि उसके साथ कोई और भी है।

"तस्वीरें मेरे पास थोड़े ही न हैं? उसी के पास हैं।"

"सुबह फोटोग्राफर ने निगेटिव दिखाए थे, पाज़िटिव वह अब इस वक़्त देगा," उसी स्त्री ने फिर कहा।

"तो चल, पहले दुकान पर चलकर तेरी तस्वीरें ले लें। देखें तो सही कैसी तस्वीरें हैं!"

"मैं ममी को साथ लेकर जाऊँगा," बच्चे ने उसकी बाँहों में मचलते हुए कहा।

"हाँ, हाँ, तेरी ममी भी साथ आ रही है," कहते हुए प्रकाश ने एक बार बीना की तरफ़ देख लिया। बीना होंठ दाँतों में दबाए आँखें झपक रही थी। वह चुपचाप उसके साथ चल दी।

फोटोग्राफर की दुकान में दाख़िल होते ही बच्चा प्रकाश की बाँहों से उतर गया और फोटोग्राफर से बोला, "मेरे पापा को मेरी तस्वीरें दिखाओ।" फोटोग्राफर ने तस्वीरें निकालकर मेज़ पर फैला दीं, तो बच्चा एक-एक तस्वीर उठाकर प्रकाश को दिखाने लगा, "देखो पापा, यह वहीं की तस्वीर है न जहाँ से तुमने कहा था, सारा काश्मीर नज़र आता है?और यह तस्वीर भी देखो जो तुमने मेरी घोड़े पर बैठे हुए उतारी थी...।"

"दो दिन से बिलकुल साफ़ बोल रहा है," बीना के साथ की युवा स्त्री ने कहा, "कहता है पापा ने कहा है तू बड़ा हो गया है, इसलिए अब तुतलाकर मत बोला कर।"

प्रकाश कुछ न कहकर तस्वीरें देखता रहा। फिर दस का एक नोट निकालकर फोटोग्राफर को देते हुए कहा, "इसमें से आप अपने पैसे काट लीजिए!"

फोटोग्राफर पल-भर असमंजस में उसे देखता रहा। फिर बोला, "पैसे तो अभी आप ही के मेरी तरफ़ निकलते हैं। मेम साहब ने जो बीस रुपये दिये थे, उनमें से दो-एक रुपये अभी बचते होंगे। कहें तो अभी हिसाब कर दूँ।"

"नहीं, रहने दीजिए हिसाब बाद में हो जाएगा," कहकर प्रकाश ने नोट वापस जेब में रख लिया और बच्चे की उँगली पकड़े दुकान से बाहर निकल आया। कुछ क़दम चलने पर पीछे से बीना का स्वर सुनाई दिया, "यह आपके साथ घूमने जा रहा है?"

"हाँ!" प्रकाश ने थोड़ा चौंककर पीछे देख लिया, "मैं अभी थोड़ी देर में इसे वापस छोड़ जाऊँगा।"

"देखिए, आपसे एक बात कहनी थी...।"

"कहिए...।"

बीना पल-भर कुछ सोचती हुई चुप रही। फिर बोली, "इसे ऐसी कोई बात मत बताइएगा जिससे यह...।"

प्रकाश को लगा जैसे कोई ठंडी चीज़ उसके स्नायुओं से छूट गयी हो। उसकी आँखें झुक गयीं और उसने धीरे-से कहा, "नहीं, मैं ऐसी कोई बात इससे नहीं कहूँगा।" उसे खेद हुआ कि एक दिन पहले जब बच्चा हठ करके कह रहा था कि 'पापा' और 'पिताजी' एक

ही व्यक्ति को नहीं कहते-'पापा' को पापा कहते हैं और 'पिताजी' मम्मी के पापा को-तो वह क्यों उसकी ग़लतफ़हमी दूर करने की कोशिश करता रहा था।

वह अकेला बच्चों के साथ क्लब की सडक़ पर चलने लगा, तो कुछ दूर जाकर बच्चा सहसा रुक गया। "हम कहाँ जा रहे हैं, पापा?" उसने पूछा।

"पहले क्लब चल रहे हैं," उसने कहा, "वहाँ से घोड़ा लेकर आगे घूमने जाएँगे।"

"नहीं, मैं वहाँ उस आदमी के पास नहीं जाऊँगा," कहकर बच्चा सहसा पीछे की तरफ़ चल दिया।

"किस आदमी के पास?"

"वह जो वहाँ क्लब में था। मैं उसके हाथ से पानी भी नहीं पिऊँगा।"

"क्यों?"

"मुझे वह आदमी अच्छा नहीं लगता।"

प्रकाश पल-भर बच्चे को देखता रहा, फिर उसकी तरफ़ मुड़ आया। "हाँ, हम उस आदमी के पास नहीं चलेंगे," उसने कहा, "मुझे भी वह आदमी अच्छा नहीं लगता।"

बहुत दिनों के बाद उस रात प्रकाश को गहरी नींद आयी। ऐसी नींद, जिसमें सपने दिखाई न दें, उसके लिए लगभग भूली हुई चीज़ हो चुकी थी। फिर भी जागने पर उसे अपने में ताज़गी का अनुभव नहीं हुआ, अनुभव हुआ एक खालीपन का। जैसे कोई चीज़ उसके अन्दर उफनती रही हो, जो गहरी नींद सो लेने से चुक गयी हो। रोज़ की तरह उठकर वह बालकनी पर गया। देखा आकाश साफ़ है। रात को सोया था, तो बारिश हो रही थी। मगर उस धुले-निखरे आकाश को देखकर आभास तक नहीं होता था कि कभी वहाँ बादल भी घिरे रहते थे। सामने की पहाड़ियाँ सुबह की धूप में धुलकर उजली हो उठी थीं।

प्रकाश काफ़ी देर वहाँ खड़ा रहा-अपनी ताज़गी में एक जड़ता का अनुभव करता हुआ। फिर दूर उठते बादल की तरह कोई चीज़ उसे अपने में उमड़ती महसूस होने लगी और उसका मन एक दबी-सी आशंका से सिहर गया। कहीं ऐसा तो नहीं कि...?

वह बालकनी से हट आया। पिछली शाम बच्चे ने उसे बताया था। उसकी मम्मी कह रही थी कि दिन साफ़ हुआ, तो वे लोग सुबह वहाँ से चले जाएँगे। रात को जैसी बारिश हो

रही थी, उससे सुबह तक आसमान खुलने की कोई सम्भावना नहीं लगती थी। इसलिए सोते वक़्त वह इस तरफ़ से लगभग निश्चिन्त था। मगर रात-रात में आसमान का रूप बिलकुल बदल गया था। तो क्या सचमुच आज वे लोग वहाँ से चले जाएँगे?

उसने कमरे में बिखरे सामान को देखा-कुछ इनी-गिनी चीज़ें थीं। चाहा कि उन्हें सहेज दे, मगर किसी भी चीज़ को रखने-उठाने को मन नहीं हुआ। बिस्तर को देखा। उसमें रोज़ से बहुत कम सलवटें थीं। लगा जैसे रात की गहरी नींद के लिए वह बिस्तर ही दोषी हो, और गहरी नींद बरसते आकाश के साफ़ हो जाने के लिए!

धीरे-धीरे दोपहर की तरफ़ बढने लगी। इससे उसके मन को कुछ सहारा मिला। वह चाह रहा था कि इसी तरह शाम हो जाए और फिर रात-और बच्चा उससे विदा लेने न आए। मगर जब दोपहर भी ढलने लगी और बच्चा नहीं आया, तो उसके मन में एक और आशंका सिर उठाने लगी। कहीं ऐसा तो नहीं कि उसकी ममी सुबह-सुबह ही उसे लेकर वहाँ से चली गयी हो?

वह बार-बार बालकनी पर जाता-एक धडक़ती आशा लिये। बार-बार टूरिस्ट होटल की सडक़ पर नज़र दौड़ाता और पहले से अधिक अस्थिर होकर कमरे में लौट आता। उसकी धमनियों में लहू की हर बूँद उत्कंठित और व्याकुल थी। उसने सुबह से कुछ खाया नहीं था, इसलिए भूख भी उसे परेशान कर रही थी। कुछ देर बाद कमरा बन्द करके वह खाना खाने चला गया। बड़े-बड़े कौर निगलकर किसी तरह दो रोटियाँ गले से उतारीं और जल्दी से वापस चला आया। मगर उतनी देर भी कमरे से बाहर रहना उसे एक अपराध-सा लग रहा था। लौटते हुए उसने सोचा कि उसे खुद जाकर टूरिस्ट होटल से पता कर लेना चाहिए। मगर सडक़ की चढ़ाई चढ़ते हुए उसने दूर से देखा-बीना बच्चे के साथ उसकी बलकनी के नीचे सडक़ पर खड़ी थी।

वह तेज़-तेज़ चलकर उनके पास पहुँच गया। मगर बच्चे ने उसकी तरफ़ नहीं देखा। वह अपनी माँ का हाथ खींचता हुआ किसी चीज़ के लिए हठ कर रहा था। प्रकाश ने उसकी बाँह हाथ में ली, तो वह बाँह छुड़ाने के लिए ज़मीन पर लोटने लगा। "मैं तुम्हारे घर नहीं जाऊँगा," उसने लगभग चीखकर कहा। प्रकाश अचकचा गया और उसकी बाँह छोडक़र जड़-सा खड़ा रहा।

"मुझसे नाराज़ है क्या?" उसने बिना दोनों में से किसी की तरफ़ देखे पूछ लिया।

"ममी, मेरे साथ ऊपर क्यों नहीं चलती?" बच्चा उसी तरह चिल्लाया।

प्रकाश और बीना की आँखें मिलने को हुईं, मगर पूरी तरह नहीं मिल पायीं। प्रकाश ने बच्चे की बाँह फिर हाथ में ले ली और तटस्थ स्वर में बीना से कहा, "आप भी आ जाइए न!"

"इसे आज जाने क्या हुआ!" बीना कुछ झुँझलाहट के साथ बोली, "सुबह से बात-बात पर तंग कर रहा है!"

"इस वक़्त यह अकेला मेरे साथ ऊपर नहीं जाएगा," प्रकाश ने स्वर की तटस्थता अब भी बनाए रखी।

"चल, मैं तुझे ज़ीने तक पहुँचा देती हूँ," बीना उसे उत्तर न देकर बच्चे से बोली, "ऊपर से जल्दी लौट आना। घोड़े वाले उधर तैयार खड़े हैं।"

प्रकाश को मन में एक नश्तर-सा चुभता महसूस हुआ। मगर जल्दी ही उसने अपने को सँभाल लिया। "आप लोग आज ही जा रहे हैं?" उसने चेष्टा की कि शब्दों से उसके मन का भाव प्रकट न हो।

"जी हाँ," बीना दूसरी तरफ़ देखती रही, "जाना तो सुबह ही था, मगर इसके हठ की वजह से इतनी देर हो गयी। अब भी यह...।" और बात बीच में ही छोडक़र उसने बच्चे से फिर कहा, "चल, तुझे ज़ीने तक पहुँचा दूँ।"

बच्चा प्रकाश के हाथ से बाँह छुड़ाकर कुछ दूर भाग गया। "मैं नहीं जाऊँगा," उसने कहा।

"अच्छा आ," बीना बोली, "मैं तुझे ऊपर पहुँचा देती हूँ-उस दिन की तरह।"

"मैं नहीं जाऊँगा," और बच्चा कुछ क़दम और दूर चला गया।

"आप आप क्यों नहीं जातीं? यह इस तरह अपना हठ नहीं छोड़ेगा," प्रकाश ने होंठ काटते हुए कहा। बीना ने आँख झपकने तक उसकी तरफ़ देख लिया। उस दृष्टि में एक तीखा चुभता-सा भाव था। मगर आँख झपकने के साथ ही वह भाव धुल गया और उसने अपने को सहेज लिया। उसके चेहरे पर एक दृढ़ता आ गयी और उसने बच्चे को बाँहों में उठा लिया। "चल, मैं तेरे साथ चलती हूँ," उसने कहा।

बच्चे का रुआँसा भाव हँसी में बदल गया और उसने माँ के गले में बाँहें डाल दीं। प्रकाश उनसे आगे-आगे ज़ीना चढऩे लगा।

ऊपर पहुँचकर बीना ने बच्चे को बाँहों से उतार दिया और कहा, "ले अब मैं जा रही हूँ।"

"नहीं," बच्चे ने उसका हाथ पकड़ लिया, "तुम यहीं रहो।"

"बैठ जाइए न," प्रकाश ने कुर्सी पर पड़ी दो-एक चीज़ें जल्दी से हटा दीं और कुर्सी बीना की तरफ़ बढ़ा दी। बीना कुर्सी पर न बैठकर चारपाई के कोने पर बैठ गयी। तभी बच्चे का ध्यान न जाने किस चीज़ ने खींच लिया। वह उन दोनों को छोडक़र बालकनी में चला गया और वहाँ से उचककर सडक़ की तरफ़ देखने लगा।

प्रकाश कुर्सी की पीठ पर हाथ रखे जैसे खड़ा था, वैसे ही खड़ा रहा। बीना चारपाई के कोने में और भी सिमटकर दीवार की तरफ़ देखने लगी। असावधानी के एक क्षण में उनकी आँखें मिल गयीं, तो बीना ने अपनी पूरी शक्ति संचित करके पूछ लिया, "कल इसकी जेब में कुछ रुपये मिले थे। वे आपने रखे थे?"

"हाँ," प्रकाश ने अटकते स्वर से कहा, "सोचा था, उनसे यह...कोई चीज़ बनवा लेगा।"

बीना पल-भर चुप रही। फिर बोली, "क्या चीज़ बनवानी होगी?"

"कोई भी चीज़। कोई अच्छा-सा ओवरकोट या...।"

कुछ देर फिर चुप्पी रही। फिर बीना ने पूछ लिया, "कैसा कोट बनवाना होगा?"

"कैसा भी। जैसा इसे अच्छा लगे, या...या जैसा आप ठीक समझें।"

"कोई खास तरह का कपड़ा लेना हो, तो बता दीजिए।"

"खास कपड़ा कोई नहीं...कैसा भी हो।"

"कोई खास रंग...?"

"नहीं...हाँ...नीले रंग का हो, तो ज़्यादा अच्छा है।" कहकर प्रकाश को थोड़ा अफ़सोस हुआ। उसे पता था बीना को नीले रंग पसन्द नहीं हैं।

बच्चा उछलता हुआ बालकनी से लौट आया और बीना का हाथ पकडक़र बोला, "अब चलो।"

"पापा से प्यार तो किया नहीं और आते ही चल भी दिया?" प्रकाश ने उसे बाँहों में ले लिया। बच्चे ने उसके होंठों से होंठ मिलाकर एक बार अच्छी तरह उसे चूम लिया और फिर झट से उसकी बाँहों से निकलकर माँ से बोला, "अब चलो।"

बीना चारपाई से उठ खड़ी हुई। बच्चा उसका हाथ पकडक़र उसे बाहर की तरफ़ खींचने लगा। "तलो न ममी देल हो लही है," वह फिर तुतलाने लगा और बीना को साथ खींचता हुआ दहलीज़ पार कर गया।

"तू जाकर पापा को चिट्ठी लिखेगा न?" प्रकाश ने पीछे से आवाज़ दी।

"लिथूंदा।" मगर उसने पीछे मुडक़र नहीं देखा। पीछे मुडक़र देखा एक बार बीना ने, और जल्दी से आँखें हटा लीं। आँखों की कोरों में अटके आँसू उसने बहने नहीं दिए। "तूने पापा को टा-टा नहीं किया," उसने बच्चे के कन्धे पर हाथ रखे हुए कहा।

"टा-टा पापा!" बच्चे ने बिना पीछे की तरफ़ देखे हाथ हिलाया और ज़ीने से बीना उतरने लगी। आधे ज़ीने से फिर उसकी आवाज़ सुनाई दी, "पापा का धल अच्छा है ममी, हमाला धल अच्छा है। पापा ते धल में तो कुछ छामान ही नहीं है...!"

"तू अब चुप करेगा कि नहीं!" बीना ने उसे झिडक़ दिया, "जो मुँह में आता है बोलता जाता है।"

"नहीं तुप तलूँदा, नहीं तलूँदा तुप...," बच्चे का स्वर फिर रुआँसा हो गया और वह तेज़-तेज़ नीचे उतरने लगा। "पापा का धल दन्दा! पापा का धल थू...!"

रात होते-होते आकाश फिर घिर गया। प्रकाश क्लब के बाथरूम में बैठा एक के बाद एक बियर की बोतलें खाली करता रहा। बारमैन अब्दुल्ला लोगों के लिए रम और ह्विांस्की के पेग ढालता हुआ बार-बार कनखियों से उसकी तरफ़ देख लेता। इतने दिनों में पहली बार वह प्रकाश को इस तरह पीते देख रहा था। "लगता है आज साहब ने कहीं से बड़ा माल मारा है," उसने एकाध बार शेर मोहम्मद से कहा, "आगे कभी एक बोतल से ज़्यादा नहीं पीता था,और आज चार-चार बोलतें पीकर भी बस करने का नाम नहीं ले रहा।"

शेर मोहम्मद ने सिर्फ़ मुँह बिचका दिया और अपने काम में लगा रहा।

प्रकाश की आँखें अब्दुल्ला से मिलीं, तो अब्दुल्ला मुस्करा दिया। प्रकाश कुछ क्षण इस तरह उसे देखता रहा जैसे वह आदमी न होकर एक धुँधला-सा साया हो, और सामने

का गिलास परे सरकाकर उठ खड़ा हुआ। काउंटर के पास जाकर उसने दस-दस के दो नोट अब्दुल्ला के सामने रख दिए। अब्दुल्ला बाकी पैसे गिनता हुआ खुशामदी स्वर में बोला, "आज साहब बहुत खुश नज़र आता है।"

"हाँ।" प्रकाश इस तरह उसे देखता रहा जैसे उसके सामने से वह साया धुँधला होकर बादलों में गुम हुआ जा रहा हो। वह चलने को हुआ, तो अब्दुल्ला ने पहले सलाम किया, फिर आहिस्ता से पूछ लिया, "क्यों साहब, वह कौन बच्चा था उस दिन आपके साथ? किसका लडक़ा है वह?"

प्रकाश को लगा जैसे साया अब बिलकुल गुम हो गया हो और सामने सिर्फ़ बादल ही बादल घिरा रह गया हो। उसने जैसे बादल को चीरकर देखने की चेष्टा करते हुए कहा, "कौन लडक़ा?"

"अब्दुल्ला पल-भर भौचक्का-सा हो रहा। फिर खिलखिलाकर हँस पड़ा। "तब तो मैंने शेर मोहम्मद से ठीक ही कहा था..." वह बोला।

"क्या?"

"कि साहब तबीअत का बादशाह है। जब चाहे किसी के लडक़े को अपना लडक़ा बना ले, और जब चाहे...यहाँ गुलमर्ग में यह सब चलता है। आप जैसा हमारा एक और साहब है...।"

प्रकाश को लगा कि बादल बीच से फट गया है और चीलों की कई पंक्तियाँ उस दर्रे में से होकर दूर उड़ी जा रही हैं-वह चाह रहा है कि दर्रा किसी तरह भर जाए जिससे वे पंक्तियाँ आँखों से ओझल हो जाएँ; मगर दर्रे का मुहाना धीरे-धीरे और बड़ा होता जा रहा है। उसके गले से एक अस्पष्ट-सी आवाज़ निकली और वह अब्दुल्ला की तरफ़ से आँखें हटाकर वहाँ से चल दिया।

"बस एक बाज़ी और...!" अपनी आवाज़ की गूँज प्रकाश को स्वयं अस्वाभाविक-सी लगी। उसके साथियों ने हल्का-सा विरोध किया, मगर पत्ते एक बार फिर बँटने लगे।

कार्ड-रूम तब तक लगभग खाली हो चुका था। कुछ देर पहले तक वहाँ काफ़ी चहल-पहल थी-कई-कई नाज़ुक हाथों से पत्तों की नाज़ुक चालें चली जा रही थीं और तिपाइयों पर शीशे के नाज़ुक गिलास रखे उठाए जा रहे थे। मगर अब आस-पास चार-चार खाली कुर्सियों से घिरी चौकोर मेज़ें ही रह गयी थीं जो बहुत अकेली और उदास लग रही थीं। पॉलिश की चमक के बावजूद उनमें एक वीरानगी उभर आयी थी।

दीवार में बुखारी की आग कब की ठंडी पड़ चुकी थी। जाली के उस तरफ कुछ बुझे-अधबुझे अंगारे रह गये थे-सर्दी से ठिठुरकर स्याह पड़ते और राख में गुम होते हुए।

उसने पत्ते उठा लिये। हर बार की तरह इस बार भी सब बेमेल पत्ते थे-ऐसी बाज़ी कि आदमी चुपचाप फेंककर अलग हो जाए। मगर उसी के ज़ोर देने से पत्ते बँटे थे, इसलिए वह उन्हें फेंक नहीं सकता था। उसने नीचे से पत्ता उठाया, तो वह और भी बेमेल था। हाथ से कोई भी पत्ता चलकर वह उन पत्तों का मेल बिठाने की कोशिश करने लगा।

बाहर मूसलाधार बारिश हो रही थी-पिछली रात की बारिश से भी तेज़। खिड़की के शीशों से टकराती बूँदें एक चुनौती लिये आतीं मगर बेबस होकर नीचे ढुलक जातीं। उन्हें देखकर लगता जैसे कई चेहरे खिड़की के साथ सटकर लगातार आँसू बहा रहे हों। किसी क्षण हवा से किवाड़ हिल जाते, तो वे चेहरे जैसे हिचकियाँ लेने लगते। हिचकियाँ बन्द होने पर गुस्से से घूरने लगते। उन चेहरों के पीछे घना अँधेरा था जहाँ लगता था, कोई चीज़ छटपटाती हुई दम तोड़ रही है।

"डिक्लेयर!" प्रकाश चौंक गया। उसके हाथ के पत्तों में अब भी कोई मेल नहीं था-इस बार भी उसे फुल हैंड देना था। पत्ते फेंककर उसने पीछे टेक लगा ली और फिर खिड़की से सटे चेहरों को देखने लगा।

"तुम बहुत ख़ुशक़िस्मत आदमी हो प्रकाश, हममें सबसे ख़ुशक़िस्मत तुम्हीं हो...!" प्रकाश की आँखें खिड़की से हट आयीं। पत्ते उठाकर रख दिए गए थे और मेज़ पर हार-जीत का हिसाब किया जा रहा था। हिसाब करने वाला आदमी ही उससे कह रहा था, "कहते हैं न, जो पत्तों में बदकिस्मत हो, वह ज़िन्दगी में ख़ुशक़िस्मत होता है! अब देख लो सबसे ज़्यादा तुम्हीं हारे हो, इसलिए मानना पड़ेगा कि सबसे ख़ुशक़िस्मत आदमी तुम्हीं हो।"

प्रकाश ने अपने नाम के आगे लिखे जोड़ को देखा। पल-भर के लिए उसकी धडक़न बढ़ गयी कि जेब में उतने पैसे हैं भी या नहीं। उसने पूरी जेब खाली कर ली। लगभग हारी हुई रक़म के बराबर ही पैसे थे। रक़म अदा कर देने के बाद दो-एक छोटे सिक्के ही उसके पास बच रहे-और उनके साथ वह अन्तर्देशीय पत्र जो शाम की डाक से आया था और जिसे जेब में रखकर वह क्लब चला आया था। पत्र निर्मला का था जो उसने अब तक खोलकर पढ़ा नहीं था। जेब में पड़े-पड़े वह काफ़ी मुचड़ गया था। निर्मला के अक्षरों पर नज़र पड़ते ही उसके कई-कई चेहरे उसके सामने उभरने लगे-उसके हाथ का एक-एक अक्षर जैसे एक-एक चेहरा हो! घर से चलने के दिन भी वह उसके

कितने-कितने चेहरे देखकर आया था! एक चेहरा हँस रहा था, एक रो रहा था; एक बाल खोले ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था और धमकियाँ दे रहा था और एक...एक भूखी आँखों से उसके शरीर को निगलना चाह रहा था! उसने अपनी ज़रूरत का कुछ सामान साथ लाना चाहा था, तो एक चेहरा उसके साथ कुश्ती करने पर उतारू हो गया था।

"निर्मला!" उसने हताश होकर कहा था, "तुम्हें इस तरह गुत्थमगुत्था होते शरम नहीं आती?"

"क्यों?" निर्मला हँस दी थी, "मरद और औरत रात-दिन गुत्थमगुत्था नहीं होते क्या?"

वह बिना एक कमीज़ तक साथ लिये घर से निकल आया था। बनियानें, तौलिये, कमीज़ें सब कुछ उसने आते हुए रास्ते में ख़रीदा था। यह सोचने के लिए वह नहीं रुका था कि उसके पास जो चार-पाँच सौ रुपये हैं, वे इस तरह कितने दिन चलेंगे! बिछाने-ओढ़ने का सारा सामान भी उसने वहीं से किराये पर लिया था...!

और वहाँ आने के चौथे-पाँचवें दिन से ही निर्मला के पत्र आने शुरू हो गए थे-वह उसके किसी मित्र के यहाँ जाकर उसका पता ले आयी थी। उन पत्रों में भी निर्मला के सब चेहरे झलक जाते थे...वह सख़्त बीमार है और अस्पताल जा रही है...उसके भाई पुलिस में ख़बर करने जा रहे हैं कि उनका बहनोई लापता हो गया है...वह रात-दिन बेचैन रहती है और दीवारों से पूछती रहती है कि उसका पति कहाँ है...वह जोगन का वेश धारण करके जंगलों में जा रही है...दो दिन के अन्दर-अन्दर पत्र का उत्तर न आया, तो उसके भाई उसे हवाई जहाज़ में वहाँ भेज देंगे...उसके छोटे भाई ने उसे बहुत पीटा है कि वह अपने 'ख़सम' के पास क्यों नहीं जाती...!

अन्तर्देशीय पत्र प्रकाश की उँगलियों में मसल गया था। उसे फिर से जेब में रखकर वह उठ खड़ा हुआ। बाहर ड्योढ़ी में कुछ लोग खड़े थे-इस इन्तज़ार में कि बारिश रुके, तो वहाँ से चलें। उनके बीच से होकर वह बाहर निकल आया।

"आप इस बारिश में जा रहे हैं?" किसी ने पूछ लिया। उसने उत्तर नहीं दिया और चुपचाप कच्चे रास्ते पर चलने लगा। सामने नीडोज़ होटल की बत्तियाँ जगमगा रही थीं-बाकी सब तरफ़, दायें-बायें और ऊपर-नीचे अँधेरा ही अँधेरा था। क्लब के अहाते से निकलकर वह सडक़ पर पहुँचा, तो पानी और तेज़ हो गया।

उसका सिर पूरा भीग गया था और पानी की धारें गरदन से होकर कमीज़ के अन्दर जा रही थीं। हाथ-पैर सुन्न हो रहे थे, फिर भी आँखों में एक जलन-सी महसूस हो रही थी। कीचड़ से लथपथ जूता चलने में आवाज़ करता, तो शरीर में कोई चीज़ झनझना जाती। तभी एक नई सिहरन उसके शरीर में दौड़ गयी। उसे लगा कि वह सडक़ पर अकेला नहीं है-कोई और भी अपने नन्हे-नन्हे पाँव पटकता उसके साथ चल रहा है। रास्ते की नाली पर बना लकड़ी का पुल पार करते हुए उसने घूमकर पीछे देख लिया। उसके साथ-साथ चल रहा था एक भीगा कुत्ता-कान झटकता हुआ, ख़ामोश और अन्तर्मुख!